IJAER/March-April 2021 /Volume-10/Issue 5 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

छायावादी कविताओं की आधुनिक विकास यात्रा का विश्लेषण

Mimlesh
Research Scholar
Deptt. of Hindi
Malvanchal University
Indore (M.P.)

Dr. Shobha Ratrudi
Research Supervisor
Deptt. of Hindi
Malvanchal University
Indore (M.P.)

सार

आधुनिकता में प्रगतिशीलता के तत्व अनिवार्य रूप से होते हैं। आधुनिक युग में मनुष्य का जीवन और सामाजिक संबंध जटिल होते जा रहे हैं। इसलिए आधुनिकता का अभिप्राय गलत अथवा सही कार्य से नहीं है, वह तो एक प्रक्रिया है जो दोनों रूपों में होती है। आधुनिकता मनुष्य को अतीत से अलग कर वर्तमान में रह कर प्रगति के पथ पर अग्रसर करती है। आधुनिकता को पश्चिमीकरण अथवा नगरीकरण समझना तर्कसंगत नहीं है। आधुनिकता परंपरा की विरोधी नहीं अपितु उससे आधार लेकर विकसित होने वाली प्रगतिशील विचारधारा है। विसंगति से अभिप्राय – जीवन की वह स्थिति जहाँ प्रत्येक धारणा का उल्टा रूप दिखाई देता है। विसंगति को देखा जाए तो वह मानव मस्तिष्क की दुर्बलताओं की उपज है। जीवन में व्यक्ति को संघर्षों का सामना करते हुए जीना पड़ता है यही उसकी सबसे बड़ी विरोधाभास की स्थिति है की न तो वह अपने दायित्वों का निर्वाह ठीक प्रकार से कर पा रहा है और न ही दायित्वों से स्वयं को अलग कर पाया। उसकी त्रिशंकु के समान स्थिति ने उसे हास्यास्पद बना दिया। यह मानव जीवन की विडंबना ही है कि न तो आज वह अपने परिवेश से अलग हो सकता है और न साथ रह सकता है। मानव जीवन की इसी विरोधाभासी स्थिति के कारण विसंगतियों का पादुर्भाव हुआ। आज व्यक्ति अपने परिवेश में स्वयं को असहाय व फालतू समझने लगा है तथा वह अपने अस्तित्व की रक्षा करने में लगा हुआ है। स्वदेशी परिवेश को आधुनिक जीवन की विसंगतियों ने प्रभावित किया है। धार्मिक अंधविश्वासी भावनाओं ने मनुष्य को अज्ञानता के गहरे कूप में धकेला, सामाजिक विषमताओं, आर्थिक समस्याओं तथा पारिवारिक कलह के कारण व्यक्ति का जीवन विसंगत हो गया।

मुख्य शब्दः– आधुनिकता, सामाजिक और प्रगतिशील।

प्रस्तावना

एक कवि के रूप में निराला की रचना यात्रा का आरंभ, 'जूही की कली' से माना जाता है जो 1916 में लिखी गयी थी। लेकिन डॉ. रामविलास शर्मा 'भारत माता की वन्दना' को उनकी पहली प्रकाशित रचना मानते हैं जो 1920 में छपी थी। डॉ. शर्मा द्वारा संपादित 'राग–विराग' संग्रह की अंतिम कविताओं को कवि की अंतिम रचनाएँ माना जा सकता है।

निराला की काव्य यात्रा के इन दोनों बिन्दुओं के बीच पड़ने वाले पड़ावों को कई प्रकार से व्याख्यायित किया जा सकता है। सांख्यिकी की भाषा में कहें तो कुछ विद्वान इसको एक सामान्य वक्रता मानते हैं। यह एक आदर्श स्थिति को दर्शाने वाला आवृत्ति वितरण है जिसे सम्मिताकार या घंटीनुमा आकृति द्वारा–दर्शाया जाता है। इस एप्रोच को माननेवाले निराला की तीन कविताओं को इस आकृति के शीर्ष पर रखते हैं और इनसे पहले की तथा इनसे बाद की कविताओं को इस शीर्ष के दोनों तरफ एक समान धरातल पर रखते है।

डॉ. बच्चन सिंह इस एप्रोच के समर्थक हैं। अपनी ख्याति प्राप्त कृति 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' में वे लिखते हैं–"तुलसीदास (1934) और सरोज स्मृति (1935) और राम की शक्तिपूजा (1936) को क्रम से पढ़ा जाये तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि इनमें अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने की एक गत्यात्यक प्रक्रिया है।"

इसका सीधा–सादा अर्थ यही हुआ कि उपर्युक्त तीनों कविताएँ इनकी रचना के शीर्ष पर हैं और इनसे पहले और इनके बाद की कविताएँ सामान्य धरातल की कविताएँ हैं। सांख्यिकी में तो इसी अवस्था को आदर्श माना जाता है। सामान्य प्रकृति में भी यही प्रक्रिया देखी जाती है–आरंभ, आरोह–शीर्ष–अवरोह–अवसान। परन्तु काव्य कौशल सहित किसी भी कला का उत्तरोत्तर विकास होना चाहिये। इस रैखिक विकास प्रक्रिया का इस दृष्टिकोण के अनुसार निराला में संभवतः अभाव दिखाई पड़ता है।

प्रकृति–सौंदर्य और प्रेम की व्यंजना

छायावादी कवि का मन प्रकृति चित्रण में खूब रमा है और प्रकृति के सौंदर्य और प्रेम की व्यंजना छायावादी कविता की एक प्रमुख विशेषता रही है। छायावादी कवियों के लिए प्रकृति देश–प्रेम और

व्यक्ति–स्वातंत्र्य की आकांक्षा की पूरक रही है। इन कवियों ने प्रकृति को "सर्व सुंदरी" कहा है। प्रसाद जी ने हिमालयी शिखरों को शोभनतन कहा है। पंत स्वयमेव पर्वत पुत्र हैं। जबकि निराला के यहाँ सागर, सरिता, निर्झर तथा जल–प्रवाह की ध्वनयात्मक व्यंजना बहुत हुई है। 'बादल राग', 'प्रभात के प्रति' और धारा आदि कविताएँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। छायावादी काव्य में प्रकृति–सौंदर्य के अनेक चित्रण मिलते हैं।

रुढियों से मुक्ति का काव्य

छायावादी काव्य रुढियों से विद्रोह का काव्य है। इन कवियों ने सर्वप्रथम पौराणिकता का निषेध किया। निराला ने हर तरह की रूढ़ि पर प्रहार करने में अपने समकालीनों में सबसे आगे थे। वे काव्य में निरंतर नवगति, नवलय, ताल छंद नव, नवल कंठ, नवजलद मंद्र नव के अभिलाषी रहे है। पन्त ने घोषणा की कि "कट गए छंद के बंध, प्रास के रजत पाश" द्यप्रसाद को भी "पुरातनता का निर्मोक" सह्य नहीं है।

व्यक्ति–स्वातंत्र्य को स्वर

व्यक्ति–स्वातंत्र्य छायावादी काव्य का मूल स्वर है। यह व्यक्ति की मानसिक और सामाजिक स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है। किन्तु व्यक्ति–स्वातंत्र्य को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए भी विश्व–बोध में उसका विलयन कर देना ही छायावाद की अन्यतम उपलब्धि है। निराला जब यह कहते है कि "मैंने मै शैली अपनाई" तो यहाँ मैं कहकर समूचे युग की पीड़ा को वे अपनी निधि मानकर चलते है। प्रसाद भी "आँसू" में इसी प्रकार वैयक्तिक विरह को "विश्व–वेदना" में परिणत करते हैं।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन

संबंधित साहित्य की समीक्षा किसी भी शोध कार्य का एक अनिवार्य हिस्सा है क्योंकि यह समग्र क्षेत्र की गहरी अंतर्दृष्टि और स्पष्ट परिप्रेक्ष्य की मांग करने वाला एक कठिन कार्य है। यह एक महत्वपूर्ण कदम है जो हमेशा के लिए मृत अंत, अस्वीकृत विषयों, व्यर्थ प्रयासों, परीक्षण और त्रुटि गतिविधि के जोखिम को कम करता है, और पिछले शोधकर्ताओं द्वारा पहले से ही खारिज किए गए दृष्टिकोण और दोषपूर्ण शोध डिजाइनों के आधार पर और भी महत्वपूर्ण गलत निष्कर्ष। यह समस्या और उसके पहलुओं की अधिक समझ प्रदान करता है और सुनिश्चित करता है ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में किसी भी सार्थक

शोध के लिए उस कार्य से पर्याप्त परिचित होना आवश्यक है, जो संबंधित क्षेत्रों में पहले ही किया जा चुका है। एक साहित्य समीक्षा मान्यता प्राप्त विद्वानों और शोधकर्ताओं (टेलर एंड प्रॉक्टर, 2007) द्वारा किसी विषय पर प्रकाशित की गई बातों का लेखा–जोखा है। विश्वकोशों, पत्रिकाओं, सार तत्वों, पुस्तकों और विषय पर जानकारी के अन्य स्रोतों में प्रकाशित उपलब्ध साहित्य की सावधानीपूर्वक समीक्षा करने से जांचकर्ता को समस्या को ठीक से परिभाषित करने और भविष्य की जांच के लिए नए विषयों का सुझाव देने में मदद मिलती है। संबंधित अध्ययनों की समीक्षा न केवल पहले से किए गए कार्य की सीमा के संबंध में एक मार्गदर्शक स्तंभ के रूप में कार्य करती है, बल्कि अनुसंधानकर्ता को अनुसंधान के संबंधित क्षेत्र में अंतराल को समझने में भी सक्षम बनाती है। इस प्रकार, साहित्य समीक्षा उस क्षेत्र के बारे में अंतर्दृष्टि प्राप्त करने में मदद करती है जिसमें काम किया गया है और जहां काम करने की आवश्यकता है। चूंकि प्रभावी शोध पिछले ज्ञान पर आधारित है, यह कदम जो किया गया है उसके दोहराव को खत्म करने में मदद करता है और महत्वपूर्ण जांच के लिए उपयोगी परिकल्पना और उपयोगी सुझाव प्रदान करता है। संबंधित साहित्य की समीक्षा शोधकर्ता को शोध पद्धति की समझ देती है जो अध्ययन के संचालन के तरीके को संदर्भित करती है।

छायावाद : नामकरण एवं काल सीमांकन

प्रारंभ या समाप्ति एक निश्चित तिथि को नहीं हो जाता है अपितु उस प्रवृत्ति का बीजवपन, विकास की एक सतत परिवेश पर आधारित प्रक्रिया है जो समयानुकूल अपनी अस्मिता प्रकट करती है अथवा उसकी अस्मिता का पराभव होने लगता है। इसी के आधार पर निश्चित तिथि का निर्धारण किया जाता है। विद्वानों ने अलग–अलग काल सीमाएं निश्चित की हैं। प्रवृत्ति का अर्थ परंपरा या परिपाटी से है। जब परंपरा में मोड़ आ जाता है तो उसे परिवर्तन को प्रवृत्ति की नवीनता की संज्ञा दी जाती है। सन् 1918 ई. से पूर्व साहित्य में एक नए मोड़ का प्रारंभ हो गया था जो पुरानी परंपरा या काव्य–पद्धति के स्थान पर नवीन परंपरा या पद्धति के निर्माण का द्योतन करता था। यह विशिष्ट काव्य पद्धति सन् 1938 ई. तक चलती रही। सन् 1936 ई. में 'प्रांतीय कांग्रेस मंडलों' की स्थापना हुई किंतु अंग्रेजी सरकार की घोषणा के पश्चात् सन् 1939 ई. में मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया।

इससे स्पष्ट है कि सन् 1936–1939 ई. का समय आधुनिक भारतीय इतिहास में एक नए मोड़ का सूचक है। कांग्रेस में मंत्रिामंडलों में सम्मिलित होने की विभिन्न प्रक्रियाएं हुईं जो जीवन में नवीन चेतना के आने के प्रतीक स्वरूप हैं। तत्कालीन छायावादी कवि स्वयं भी अपने छायावादी भाव बोध को लांघने का प्रयत्न कर रहे थे। जिसका प्रमाण पंत के 'युगांत' तथा निराला की 'अनामिका' में प्रकाशित अनेक कविताएं हैं जो छायावादी संसार को पार कर एक नए मोड़ पर आ खड़ी ही नहीं हुई थी अपितु ठोस यथार्थ के निकट आने के लिए प्रयत्नरत थीं। पंत का संकलन तथा उसका नामकरण स्पष्ट कर रहा है कि एक युग का अंत हो गया। 'युगांत' उनकी कविता में छायावाद से प्रगतिवाद की ओर जाने का संकेत देता है। छायावादी कवि पंत सन् 1938 ई. तक प्रगतिवाद की ओर अग्रसर हो चुका था। इसलिए सन् 1938 ई. को छायावाद का अंत माना जाना उचित है।

काव्य में विकास

किसी भी वस्तु विशेषकर कविता में जब हम विकास की बात करते हैं जो यह दो आयामों में हो सकता है। उस वस्तु के रूप या उसकी संरचना में विकास। और उसकी अंतर्वस्तु में विकास। विकास की अवधारणा भीदो स्तरों पर काम करती है–गुणात्मक विकास या गुणवत्ता में विकास और परिमाणात्मक विकास अर्थात् संख्या या आकार में विकास। परिमाणात्मक विकास को हम काव्य के कलेवर से और गुणात्मक विकास को हम उसकी अंतर्वस्तु से जोड़ कर देख सकते हैं। इन दोनों अवधारणाओं में अन्तर्विरोध हो सकता है। साहित्य या सृजनात्मकता के किसी भी क्षेत्र में ऐसा संभव है। चंद्रधर शर्मा गुलेरी मात्र एक कहानी के बलपर हिन्दी कथा साहित्य में अमर हो गये तो प्रेमचंद लगभग 300 कहानियाँ लिखकर अमरपद को प्राप्त हुये।

निराला की काव्य भाषा के स्तर

उपर्युक्त पूरा विवेचन नंददुलारे वाजपेयी द्वारा किया गया है। इसका समाहार करते हुये इन्होंने निराला की काव्यभाषा के पाँच स्तर बताए हैं। प्रथम स्तर पर उनकी सामासिक पदावली है जिसमें उन्होंने संस्कृत बहुत भाषा का प्रयोग किया है।

निराला की काव्यभाषा का दूसरा स्तर वह है जिसमें हिन्दी और संस्कृत की पदावली समान रूप से मिली हुई है।

विशुद्ध खड़ीबोली की रचनाओं में निराला की काव्यभाषा का तीसरा स्वरूप दिखाई देता है। अपने परवर्ती काव्य में उन्होंने ठेठ हिन्दी के अनेकशः प्रयोग किये हैं।

हास्य और व्यंग्य की रचनाओं में निराला की काव्यभाषा का चतुर्थ स्तर प्राप्त होता है। इस स्तर पर निराला ने उर्दू छंदों, हिन्दी–उर्दू मुहावरों और हिन्दी–उर्दू मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है। निराला की काव्यभाषा का पाँचवा स्वरूप विशुद्ध रूप से प्रयोगात्मक है। ये प्रयोग उनके 'बेला' काव्य संग्रह में विशेषतया दिखाई देते हैं।

बाजपेयी जी के विचारों का समेकन

छायावादी काव्यभाषा के बारे में सामान्य रूप से और निराला की काव्यभाषा के बारे में विशेष रूप से व्यक्त बाजपेयी जी के विचारों को निम्नलिखित ढंग से बिन्दु बद्ध किया जा सकता है––

1. काव्यभाषा सामान्य भाषा से अधिक व्यापक, व्यंजक, चमत्कारपूर्ण और परिष्कृत होती है।
2. काव्यभाषा अपने वर्ण्य–विषय के अनुरूप उदात्त और अवदात्त होती रहती है।
3. काव्यभाषा का प्रत्येक शब्द अपने आप में एक भावात्मक इकाई का प्रतिनिधि होता है।
4. निराला की काव्यभाषा में नये प्रयोगों, नये विस्तारों और नवोन्मेष के दर्शन होते हैं।
5. निराला की काव्यभाषा के स्रोत जयदेव, तुलसी और रवीन्द्रनाथ की कविता में हैं।
6. इसमें सामासिकता, संगीतात्मकता और माधुर्य है।
7. निराला की काव्यभाषा में दंत्य प्रयोगों का आधिक्य है। अर्थात् 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग अधिक है।
8. निराला की काव्यभाषा पर तुलसी का भी प्रभाव है जिसके तहत संस्कृत की पदावली का हिन्दी के देशज शब्दों के साथ मिश्रण किया गया है।
9. रवीन्द्रनाथ की काव्यभाषा का प्रभाव लेकर निराला ने संगीतमयता, अनुप्रास और अनुप्रास को अपनाया।

10. तुकांतहीन रचनाओं में स्थान–स्थान पर मिलने वाला तुक भी रवीन्द्रनाथ का प्रभाव है।

छायावादी काव्य का व्यक्ति स्वातंर्त्य और विद्रोह

हिन्दी साहित्य के इतिहास में विद्रोह या प्रतिक्रिया का सिद्धांत बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके अनुसार हमारे साहित्य की एक धारा या प्रवृत्ति अपने से पूर्व की धारा या प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया का परिणाम होती है। इसी के अनुसार साहित्यिक कालों या युगों का परिवर्तन होता है और नये–नये आंदोलनों का जन्म होता और उनकी मृत्यु भी होती है।

इस प्रकार विचार करने पर पता चलता है कि आदिकाल या वीरगाथाकाल या सिद्ध–सामंत काल की अतिशय युद्ध प्रियता एवं श्रृंगारिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप भक्ति काल का उदय हुआ जिसमें परमार्थिक सत्ता के प्रति आत्मनिवेदन और पूर्ण समर्पण का साहित्य रचा गया। भक्तिकाल में ऐहिकता की उपेक्षा जब अपनी चरम सीमा पर पहुँची तो रीतिकाल या श्रृँगार काल का आविर्भाव हुआ। इस युग की चरम ऐहिकता और इन्द्रीय लिप्सा तथा जीवन के अन्य प्रश्नों और पक्षों की इसकी उपेक्षा की प्रतिक्रिया स्वरूप आधुनिक काल या भारतेन्दु युग का आरंभ हुआ। इसकी चरम परिणति द्विवेदी युगीन कविता में हुई।

इस युग की घनघोर सामाजिकता या सार्वजनिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप व्यक्ति स्वतंर्त्य और विद्रोह की भावना से परिपूर्ण छायावादी काव्यांदोलन का उन्मेष हुआ। इस क्रिया–प्रतिक्रिया के सिद्धांत को आगे भी लागू हुआ समझना चाहिए।

इस संबंध में डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है–"वस्तुतः ये साहित्यिक आन्दोलन हिन्दी साहित्य की अपनी परम्परा के अंतर्गत क्रिया–प्रतिक्रिया के एक निश्चित अनुक्रम में उत्पन्न और समाप्त हुए।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी यह मानते हैं कि "छायावाद का चलन द्विवेदी युग की रूखी इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था।"

उपसंहार

निराला की प्रतिनिधि रचनाओं के इस विस्तृत अध्ययन के अंत में वही बात पुष्ट हुई कि निराला के काव्य में भाव की दृष्टि से बहुत आरोह–अवरोह है जो इनकी लंबी कविताओं में प्रातिनिधिक रूप से द्रष्टव्य होता है। लेकिन निराला के प्रकृति चित्रण में एक प्रकार की प्राकृतिक व्यवस्था देखने को मिलती है जहाँ शरद के बाद शिशिर, शिशिर के बाद हेमन्त, हेमन्त के बाद वसन्त और इससे भी आगे ग्रीष्म तथा पावस का क्रम मिलता है। प्रत्येक ऋतु के परिचायक प्राकृतिक परिवर्तनों की भी कवि चर्चा करता चलता है। ऋतु विशेष में खिलने वाले फूलों पर कवि की दृष्टि विशेष रूप से जाती है। कभी–कभी वह इन्हें देख नहीं पाता तो इनकी सुगंध को अवश्य अनुभव करता है। जैसे–वसंत में आम्रमंजरियों का फूटना, पलास का फूलना, ग्रीष्म में चमेली, अपराजिता, जूही, मालती आदि में फूल आना, बेले में कलियों का आना, आदि। एक ऋतु का आना कवि के मन में पिछले साल उसी ऋतु के आने की स्मृति को उभार देता है। इसलिये–'फिर उपवन में खिली चमेली', 'फिर बेले में कलियाँ आई' आदि प्रयोग बराबर मिलते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला के काव्याकाश में निराशा के काले बादलों के बीच आशा की बिजली भी कौंधती रहती है और दूसरी तरफ उल्लास की छिटकी चाँदनी में अवसाद के घने–घने बादल भी छाये रहते हैं। लेकिन उत्तरोत्तर उल्लास की मात्र कम होती जाती है और अवसाद बढ़ता जाता है। इसको देखते हुये डॉ. रामविलास शर्मा का यह कथन सत्य ही लगता है कि निराला क्रमशः यथार्थदर्शी होते चले गये। इस प्रक्रिया को इस संदर्भ में यदि विकास मानना चाहें तो मान सकते हैं लेकिन विकास शब्द के सच्चे अर्थों में यह विकास नहीं है। किसी भी कवि की काव्यभाषा पर विचार के चार बिन्दु हो सकते हैं जिन्हें भाषा वैज्ञानिक भाषा के स्तर कहते हैं।

संदर्भ

1. साहित्य का परिवेश, अज्ञेय, पृ० 03
2. तार–सप्तक, सं० अज्ञेय, पु०
3. दूसरा तार–सप्तक, सं० अज्ञेय, पृ० 6
4. तार–सप्तक, सं० अज्ञेय, पृ० 7
5. तार–सप्तक (द्वितीय संस्करण) सं० अज्ञेय, पृ० 275–279

6. दस्तावेज, सं० विश्वनाथप्रसाद तिवारी, पृ० 5
7. अज्ञेय ओर आधुनिक रचना की समस्या, डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ० 7
8. बज्ञेय : एक अध्ययन, डॉ० भोलाभाई पटेल, पृ० 89
9. आत्मनेपद, अज्ञेय, पु० 28
10. ऋण स्वीकारी हुं––लिखी कागद कोरे, अज्ञेय, पृ० 6–,7
11. आत्मनेपद, अज्ञेय, पृ० 22
12. ऋण स्वीकारी हूं–– लिखी कागद कोरे, अज्ञेय, पृ० 6–7
13. चिन्ता, अज्ञेय, पृ० 47
14. तार–सप्तक, सं० अज्ञेय, पु० 278
15. इत्यलम अन्ज्ञेय, मुख्य पृष्ठ
16. अज्ञेय : एक अध्ययन, डॉ० भोलाभाई पटेल, पृ० 72. वही, पृ० 30
17. दस्तावेज, सं० विश्वनाथप्र साद तिवारी, पु० 85
18. त्रिशंकु, अज्ञेय, 10 77–78
19. आत्मपरक, बज्ञेय, पु० 57
20. रूपाम्बरा, अज्ञेय, पु० 8
21. आत्मनेपद, अज्ञेय, पु० 43
22. तार–सप्तक, बच्ज्ञेय, पू० 278